International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 3; May 2017; Page No. 24-27

स्त्री–दृष्टि का वर्तमान परिदृश्य

जी0 गणेशन मिश्र

(शोध छात्र) हिन्दी विभाग, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रस्तावना

आज हमारे समाज में न जाने कितनी विसंगतियाँ, बुराइयाँ, कुरीतियाँ जन्म ले रही हैं, जिसे आसानी से दूर नहीं किया जा सकता है। हमारे कथाकार साहित्यकारों ने समाज के विविध तबकों विशेष रूप से नारी की ज्वलन्त, समकालीन परिवेश से उभरती समस्याओं को, उपेक्षित नारियों, अशिक्षित महिलाओं उनकी दीन–हीन दशा पर, अनैतिकता, व्यभिचार, बलात्कार, वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं को कहानी एवं उपन्यासों के माध्यम से उनको उचित स्थान दिलाने का प्रयास किया है। स्त्रियाँ न जाने कितने अत्याचारों को सहन करती हैं और चुपचाप आँसुओं को पीकर रह जाती हैं। बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप नारी के रूप में परिवर्तन आना जरूरी है। जमाने ने रूख बदल दिया है। देश की लड़कियों पर बड़े–बड़े उत्तरदायित्व आ गए हैं। अब उन्हें और अधिक सचेत रहने की आवश्यकता है। 21वीं सदी में भारतीय नारी के समक्ष कई नई चुनौतियाँ है। भारतीय संविधान ने पुरूष और नारी को समान अधिकार दिये हैं, इसलिए उन अधिकारों को संवैधानिक आश्वासन द्वारा सुदृढ़ करना जरूरी नहीं है, किन्तु यदि हमारा वास्तविक सामाजिक यथार्थ समानता के उन अधिकारों की अवहेलना करता है तो स्त्री को आगे आकर अपने सम्मान, अस्तिव व पहचान को अभिव्यक्ति देनी होगी। इस तरह– ''आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ–साथ आत्मसजगता का रेखांकन पिछले पचास वर्षों में महिला–लेखन का केन्द्र बिन्दु रहा है।

अरविन्द जैन का लिखना है कि– ''एक स्त्री तो वह है जो घर में रहती है, समय पर खाना पकाती है, बच्चे पालती है, रात में पति को संतुष्ट करती है, उस स्त्री को महान कहा जा सकता है। जिस परिवार का स्वामी पुरुष है। दूसरी है साझी सम्पत्ति जिसमें कालगर्ल, वेश्याएँ आदि आती हैं। अक्सर इन्हें आजाद स्त्री की कोटि में रखा जाता है। आजाद स्त्री कुलटा स्त्री। पुरुष पचास औरतों के साथ सम्बन्ध रखकर अच्छा कहला सकता है, अपने घर लौट सकता है। स्त्री एक प्रेम करके भी चरित्रहीन कही जा सकता है और अफसोस कि स्त्री की उस छवि को बनाने में न धर्मशास्त्र पीछे है, न ही साहित्य।

आज स्त्री–विमर्श ने नारी के दमन के विरुद्ध नारी के प्रतिकार के स्वर को विकसित करने में अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है। यहाँ प्रतिकार का स्तर प्रतिशोधात्मक नहीं है बल्कि उसके मूल में सामाजिक न्याय, समानता, शांतिपूर्ण, सहआस्तित्व की ही भावना निहित है। यह विमर्श समाज के नजरिये को बदलने की मांग करता है। आजकल स्त्री पाठ, स्त्री विमर्श का सर्वाधिक विवाददास्पद चर्चित एवं ज्वलंत मुद्दा है। यहीं से अन्तर्पाठीयता विखण्डन की स्थिति पैदा होती है। स्त्री पाठ ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। इसने साहित्य को परखने, देखने, अधिग्रहण का परिप्रेक्ष्य ही बदलकर रख दिया है। प्रश्न यह है कि स्त्री–पाठ को पुरुष किस परिप्रेक्ष्य से पढ़ता है और स्त्री होते हुए उसे कैसे पढ़ती है? पाठानुभवों, अर्थग्रहण, अभिग्रहण से भिन्नताएँ कैसे और क्यों है? इस संदर्भ में सुधीश पचौरी का कहना है कि– ''उत्तर संरचनावाद और विखण्डनवादी पद्धति की एक विशेषता स्त्री का नितांत अलग किस्म का पाठ संभव करना है। बलात्कार के किसी वृतांत या रिपोर्ट या कथा को जब कोई स्त्री होते हुए उसे पढ़ती है तो उसका पाठानुभव किसी मर्द के उस पाठानुभव से न केवल भिन्न होगा बल्कि विपरीत भी होगा। दहेज प्रथा का वृत्तांत भी मर्द के लिए अलग पाठ बनाता है और स्त्री के लिए अलग। इस तरह भाषा और रचना में पाठ का बहुलतावाद अनिवार्यतः पैदा हो जाता है। स्त्री के अनन्य पाठ में इसमें वादी सार्वभौमिकता का कोई स्थान नहीं क्योंकि उसके पाठ से मूल्यों का सार्वदेशिकता और सार्वकालिकता, प्रतिनिधिकता आदि भर–भराकर गिर पड़ते हैं। यही स्त्री लेखन का उत्तर यथार्थवाद है। एक विध्वंसक तत्व है।

रामदरश मिश्र स्त्री को पुरुष से हीन मानने से इन्कार करते हुए अपनी कहानी 'एक थकी हुई सुबह' में प्रश्न खड़ा करते हैं कि– ''क्या स्त्रियों को कोई दूसरा ईश्वर पैदा करता है या स्त्री पुरुष के दो नियम हैं। स्त्रियाँ इस बात को अच्छी तरह जानती हैं कि हममें पुरुष से ज्यादा ताकत है, हाँ शारीरिक रूप से स्त्रियाँ थोड़ा जरूर कमजोर पड़ जाती है, पर हम ही आप तो हैं बच्चे को सँवारने से लेकर समाज को बनाने में पूरा सहयोग देतें हैं। 'हम किसी से कम नहीं' भावना स्त्रियों की प्रेरणा है।

आज की नारी घर की चहारदिवारी में बन्द रहना नहीं चाहती। व समता की खोज में निकल पड़ी है। उसने अस्तित्व की रक्षा की जिम्मेदारी स्वयं ही ले ली है। इस बात को हिन्दी के विख्यात समीक्षक रमेश कुन्तल मेघ ने भी स्वीकार किया है कि– ''आजकल नारी की ऐतिहासिक कर्म भूमिकाएँ– गृहिणी, धात्री, जननी, उपचारिका, सेविका, दासी आदि जो शय्या और रसोइ की धुरी में केन्द्रित थी, अब बदल रही है। वह गृह से बाहर और अन्दर–दोनों क्षेत्रों में धन्धों को अपना रही है और गृह की धुरी के ढीला होने के साथ 'विवाह–संस्था' के अस्तित्व पर भी प्रश्न उठ रहे हैं अर्थात, सामंती आधार टूट रहे हैं। कमलेश्वर का मत है कि– ''नारी स्वतंत्रता हाथी के दाँत हैं जिन्हें हर घराना खूबसूरती के लिए लगाए रखता है।

महिला संबन्धी कानून के विशेषज्ञ और लेखक अरविन्द जैन घरेलू हिंसा के बारे में कहते हैं– ''आज के समय में औरतें बदली हैं, पुरुष नहीं बदले। परिवार–व्यवस्था और विवाह संस्था यथावत है। परिवार में बहू की स्थिति बहुत ज्यादा नहीं बदली है। आज भी उसे सम्पत्ति का अधिकार नहीं है – न मायके में, न ससुराल में। शिक्षित होने के बावजूद स्त्रियाँ आज की घरेलू हिंसा को उचित क्यों ठहराती है? इस प्रश्न के उत्तर में जैन का कहना है– ''अकादमिक शिक्षा भी स्त्री–जीवन को संचालित नहीं करती। घर के संस्कार मर्यादा और परम्परा का जो पाठ वे माँ के दूध से घूँटती आ रही हैं, वही उनके मानस को तैयार करता है। आज भी सीता–सावित्री ही स्त्रियों के आदर्श है। बिड़ा बेढंगा लगता है कि वह स्त्री जो सौन्दर्य की अपरिमित स्रोत के साथ–साथ पति–परायण, सात्विक प्रेम, शक्ति सौम्य की देवी, सुख देने वाली है उस पर इतना अत्याचार किया जाता है। बड़े दुख की बात है हर जगह उसी के सम्मान उसी की अस्मिता–अस्तित्व की हत्या की जा रही है, अत्याचार किये जा रहे हैं। बलात्कार किये जा रहे हैं।

बेचारी असहाय का नाम आज भी लगा हुआ है। ऐसे शब्द सुनने में अच्छा नहीं लगता जबकि महिलाएँ हर क्षेत्र में चाहे आर्थिक हो, सामाजिक, राजनीतिक हो अपना स्थान स्थापित कर चुकी है।

ममता कालिया की नजर में ''वर्तमान समय में यह परिवर्तन हुआ है कि सरलीकृत आदर्शवाद में से संकीर्णता की गन्ध आने लगी है। युग के अनुसार आदर्श बदलते रहते है। आधुनिक दृष्टि और चेतना के साथ सोचें तो पता चलेगा कि आज पति के अन्याय व प्रताड़ना को प्रश्रय देने वाली स्त्री पतिव्रता नहीं वरन् वज्रमूर्ख कहलाएगी। लेकिन कब तक ? हम सब बहुत आगे बढ़ चुके हैं। सदियों से पददलित, शोषित एवं विष को घूँट पीने वाली नारी ने जबरदस्त अँगड़ाई ली, पराधीनता की हर बेड़ियाँ, कड़ियों के हर जोड़ चटख़–पटख़ कर टूट गये। और हम अन्यायी पुरुषों की ओर एक क्रोध भरी दृष्टि डालते हुए आगे बढ़ गए। अब इनमें प्रतिरोध की भावना दिनों–दिन तीव्रतर होती जा रही है। फिर भी हमें थोड़ा स्वयं से समझौता करना पड़ेगा, अपने आप को बदलना होगा। अशिक्षित, निम्न वर्ग, मध्यवर्गीय परिवार की युवतियों को हमें अधिक सचेत करने की आवश्यता है। दुनियाँ की रंगीनियों, उसके बहकावें में न आकर वह अपने व्यक्तित्व का स्वयं निर्माण कर अपनी अस्मिता अपनी पहचान स्वयं दर्ज करायें। यद्यपि स्त्रियों की शिक्षा पर जोर अधिक डाला जा रहा है फिर भी निम्नवर्ग, मलिन बस्तियों में देखें तो आज की स्त्रियाँ पूर्ण रूप से शिक्षित नहीं हो पा रही हैं। सरकार द्वारा चलायी जा रही शिक्षा नीतियाँ, शिक्षा सारक्षता अभियान, कन्या विद्या धन, तमाम योजनाएँ लगातार महिलाओं को आगे बढ़ाने में क्रियान्वित है फिर भी शहरों के आस–पास, गाँवों की स्त्रियाँ अशिक्षित हैं। और जब तक यह शिक्षित नहीं होती, तब तक बच्चा पढ़कर भी कुछ नहीं कर सकता। मौलिकता, नैतिकता का मूल्य बच्चे की माँ होती है, उसे संस्कारित करने में उसका पूरा योगदान होता है।

प्रमीला के0 पी0 का कहना है कि– ''उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जो चिन्ता समूचे विश्व में सबसे व्यापक रही, वह स्त्री की अस्मिता, उसके अधिकारों के इर्द गिर्द स्थित रही और इसका परिणाम है कि आज कुछ चिन्तक 21वीं सदी को स्त्रियों की सदी कह रहे हैं और नारीवादी विमर्श अलग–अलग समाजों में यौन–राजनीति के अलग–अलग पहलुओं को समझने के लिए जूझ रहा है।

स्त्री चिन्तन जो आज चर्चा का विषय बना हुआ उस में आज भी जरूरत है कुछ नयापन, नयी सोच को सृजनात्मक रूप देने के लिए, नारी आज दयनीय वस्तु नहीं है, वह केवल भोग्य की वस्तु नहीं है। वह अदम्य शक्ति है। महिलाओं को स्वयं अपने शोषण के विरुद्ध, प्रताड़ना के खिलाफ आवाज उठानी है। पुरुष का अपना एक वजूद है, वह औरत से बँधता अपनी मर्जी से है और चाहे झटककर उसे दूर फेंक देता है। औरत के लिए ऐसा सम्भव नहीं है। पर वह शिक्षा, नैतिकता आदर्श नैतिक मूल्यों के प्रहार उसे दहला सकती है, उसके अस्तित्व पर वह भी कुठाराघात कर सकती है।

आज नारी अपनी मुक्ति का संघर्ष–राग छेड़ चुकी है। आज नारी अपने आप को ईंट कंकरीट से बने–चहारदीवारी में कैद नहीं रख सकती बल्कि उस लक्ष्मण रेखा से बाहर आकर स्वयं के साथ–साथ समाज के भविष्य को भी निश्चित आयाम देने में पूरे मनोयोग से जुट गई है। स्त्रियों ने यह बात जान लिया की बिना आर्थिक स्वतंत्रता के वे पुरुषों की परतंत्रता की बेड़ियों को नहीं काट सकतीं। अतएव औरतों ने आर्थिक–स्वतंत्रता की बात छेड़ी। इस संदर्भ में कहना है कि– ''जहाँ पहले औरतों के लिए आर्थिक–आत्मनिर्भरता दूर की कौड़ी थी वहीं आज औरतें विश्व फलक पर अपनी आत्मनिर्भरता का दास्तान लिख रही हैं। ऐसी स्थिति में आज के पुरुष–वर्ग को सावधान होना ही होगा, क्योंकि अब औरतें शोषण को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। जहाँ औरतों ने शोषण के खिलाफ जंग जारी कर दिया है वहीं निर्णय लेने की क्षमता को भी वे अपने ऊपर छोड़ती है क्योंकि देह, आत्मा सब पर अब औरत का पूरा–पूरा हक है। अपनी जिंदगी के फैसले वह खुद ले सकती है, उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है, इसकी समझ भी उसे है। इस नाते औरत ने अपने दबे–कुचले व्यक्तित्व के चोले को उतार फेंका है और स्वतंत्रता की, अपने अस्तित्व की, अपने पहचान की एवं अपने योगदान की गाथा हर पल लिख रही हैं।

आज के स्त्री विमर्श को विज्ञापन, प्रचार और फैशन में तब्दील कर दिया गया है। यह शोषण अदृश्य परन्तु युगो–युगों की तुलना में अत्यन्त भयानक है। क्योंकि इसमें शोषित की इच्छा और ललक शामिल हो गयी है। सौन्दर्यीकरण के नाम पर ब्यूटीपार्लर और फैशन डिजाइनर स्त्री के लिए नये आभरण, नये जेल खाने बना रहे हैं। इस तरह आज आधुनिकता और हमारी संस्कृति–विचार धाराओं, रहन–सहन के बीच इतने भटकाव आ गये हैं कि आज की नई पीढ़ी में स्त्री का वर्चस्व उसकी अस्मिता पर दाग लगता जा रहा है।

अगर विवेकपूर्ण देखा जाए तो महिलाएँ अब भी जागरूक नहीं हुई है, उनके अन्दर एक दुर्बलता छुपी हुई है। वह रंग–बिरंगी तितली बनकर असंख्य मुद्राओं में पुरुष की वासना भरी आँखों में बिठाकर देखने का मोह नहीं छोड़ पायी है। उसके थोड़ी सी 'सी–सी' करने पर पुरुष के लिए सुधा की शीशी ढरक जाती है। पुरुषों को मोहित करना अपने आप को सँवारना बहुत बड़ी समस्या पैदा कर रहीं है। जब तक उसकी यह आन्तरिक दुर्बलता दूर न होगी, उसके मानस का नवसंस्कार न होगा, उसका भीतरी व्यक्तित्व न बदलेगा तब तक नारीत्व, पराधीनता, उसकी दास्ता समाप्त न होगी, पुरुष उस पर हावी रहेगा। कहीं भी किसी समय। सीमा दीक्षित का कहना है कि– ''आज नारी इतनी दिग्भ्रमित है कि जहाँ वह जो कुछ भी देखती सुनती है, वहीं दौड़ने लगती है और उस अंधी दौड़ की भूल–भुलैया में हाँफती हुई दौड़ती जा रही है। जहाँ तक उनकी सोच है, उन्हें स्वयं से समझौता करना होगा। अपने आचार–विचार से, रख–रखाव से। आज बाह्य संस्कृति का इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि हम अपने नैतिक मूल्यों को भूलते जा रहे हैं। उन्हें अपनी वेशभूषा से लेकर सौन्दर्य प्रसाधन आदर्श मान्यताएँ उदाहरण स्वरूप– विज्ञापन देखिए– किसी भी विज्ञापन में स्त्रियाँ अर्धनग्न वस्त्र में दिखती हैं जबकि पुरुष कम। ऐसे में विपरीत प्रभाव तो पड़ेगा ही। पुरुष अपने दृष्टिकोण में बड़ा संकुचित है वह परायी स्त्रियों से हँसना–बोलना, हँसी–मजाक साधारण रूप से लेता है। यह मानसिकता स्त्री को नीचा दिखाने में सहायक होती है।

वर्तमान उदारीकरण तथा संरचनात्मक सामंजस्य के दौर में बाजार के नियमों को अधिक महत्व दिया जा रहा है, साथ ही राज्य की समाज कल्याण की जिम्मेदारियों को घटाने पर जोर दिया जा रहा है। स्त्रियों की शिक्षा स्वास्थ्य समबन्धी प्रावधानों पर इसका सीधा असर पड़ रहा है।

आज इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर हम खड़े हैं युग बदल गया, देश की अनुगूँज बदल गयी, हमारी परिस्थितियाँ बदल गयी, स्त्रियाँ आज पुरुषों के बराबर कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने लगी, घर की चहारदीवारी में, बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ मुक्त होकर जहाँ कल्पना भी नही की थी, आजादी के संघर्षों में घरों से बाहर आने का अवसर पाने और संवैधानिक समान अधिकार की स्वीकृति पाने के बाद आज ऐसा कोई क्षेत्र बाकी नहीं रह गया है जहाँ नारी के नाते नारी का प्रवेश न हुआ हो। नारी का क्षेत्र केवल चूल्हा–चक्की, जच्चा–बच्चा, मन्दिर तक सीमित नहीं रह गया है वरन् नारी वर्ग ने देश की प्रबल शक्ति के रूप में अपना स्थान ग्रहण किया है। स्त्रियाँ अब पहले से बहुत अधिक शक्तिशाली हो गयी है। वे भी अपने निजी जिन्दगी जीने के लिए प्रतिबद्ध दिखती है। उनको आज

के समय में अपनी अहमियत का अंदाजा भलीभाँति आकना आ गया है।

स्त्री सभी क्षेत्रों में अपनी सकारात्मक उपस्थिति दर्ज करा चुकी है पर आज भी स्त्री की समाम नकारात्मक समस्याएँ उभरती हुई आ रही है। और आज हम पुनः स्त्रीवृद्धि से उनका मूल्यांकन कर रहे हैं। स्त्री विमर्श की अवधारणा के भीतर से ही हमें उन्हें हीनता के बंधन से उबारना होगा। स्त्रियों में इतना आत्मविश्वास भरा जाए, उसके सकारात्मक सोच को इतना अधिक विकसित किया जाये कि स्वयं आधारशिला बन जाये। यद्यपि आज हालात, परिस्थितियाँ बदली हुई है, पर स्त्री और पुरुष सम्बंधों में सदियों से चला आ रहा अन्तराल अभी भी बना हुआ है। बराबरी से नौकरी, शिक्षित एवं योग्य होने के बावजूद भी आज भी स्त्री आन्तरिक रूप से निर्बल है और इसका कारण है हमारी मानसिक सोच। स्त्री पुरूष के साथ बराबरी के होड़ में है। इस बदले हुए परिवेश में स्त्री फँस चुकी है आधुनिक समाज में अभी तक पुरुष मानसिकता में अपेक्षित बदलाव नहीं ला पाये हैं, नगरों की अपेक्षा गाँवों में स्त्रियाँ और भी विवश हैं, अशिक्षित स्त्री अपनी बातों को समाज के समक्ष, परिवार के समक्ष रख नहीं पाती है। हमें ऐसी स्त्रियों की दीन हीन दशा को सुधारना होगा। स्त्री–पुरुष दोनों में किसी का भी एक के बगैर दूसरे का गुजारा नहीं हो सकता, एक–दूसरे की आवश्यकता पड़ती रहेगी। बिना सहयोग की भावना के जीवन को सार्थक नहीं जी सकते, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सृष्टिकर्ता ने यह वरदान मानव जाति को ही दिया है।

इस तरह से वर्तमान समय में देखा जाए तो अब परम्पराएँ टूटने लगी है। स्त्रियाँ परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ने लगी है। और जिन्हें वह तोड़ नहीं पायी उनसे लड़ती, झगड़ती, टकराती अपनी वैचारिक पहल के माध्यम से निरंतर उन पर भी विजय पाने की जद्दोजहद जारी रखा है। आज स्त्रियों ने उन सभी वर्चस्वादी आनवीय परम्पराओं को प्रश्नांकित कर रही है और पूछने के लिए भी सदैव तत्पर दिखायी दे जा रही है कि भला बताइए कि उन्हें कैसे और क्यूँ अपनाया जाये? आज स्त्रियों के सामने विकल्प है, आधुनिक जीवन शैली है, सुख–सुविधा के साधन हैं, उनके श्रम का मूल्य है। वे नये जीवन मूल्यों को स्वीकार करने के लिए सर्वथा स्वतंत्र है, वे अपने मन से कहीं आ जा सकती हैं, इच्छाओं के अनुरूप कार्य क्षेत्र का चुनाव करने की आजादी है वह जो कुछ भी खाना, पहनना चाहती हैं, कर सकती है किन्तु यह सब करने के बावजूद जैसे ही स्त्री आधुनिक मूल्यों की तरफ बढ़ती हैं, परम्परागत जीवन मूल्यों से उसे टकराना होता है। इसमें से किसी एक ही का चुनाव करना होता है लेकिन स्त्री मन का द्वन्द्व उसे हमेशा उलझाए रखता है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा का कहना है कि– ''जरा सोचिए कि नाईट डयूटी करके लौटने वाली स्त्री ब्रह्ममुहूर्त में जागकर परम्पराएँ कैसे निभाती? क्या उसे सचमुच निभानी चाहिए? अगर न भी डयूटी पर जाए तो भी क्या वह घर में एक नौकरानी की हैसियत रखती है? मायके में पिता, भाई की सेवा के लिए अपने आपको झोंकने के बाद ससुराल में पति–देवर, सास–ससुर, की सेवा में तल्लीन रहना ही उसकी नियति है और यही वे परम्पराएँ है जिन पर हमें गर्व है। माँग में सिन्दूर, गले में मंगलसूत्र और पाँव में महावर रचाए स्त्री कोल्हू के बैल की तरह दबकर खटती रहती है। हर मोर्चे पर खुद को हारते हुए घर को जिताते चलती है। उसके कष्टों को, उसकी तकलीफों को अनदेखा कर देना भी एक बेढ़ब परम्परा का ही हिस्सा है। लेकिन एक बहुत बड़ा प्रश्न यह है कि स्त्री को जैसी आजादी चाहिए क्या उसका कोई स्वरूप, संरचना व ढांचा का निर्माण कर पायी है अथवा नहीं? आजाद हो रही स्त्री क्या वास्तव में मुक्त हो रही है या नहीं? क्योंकि स्त्री मुक्ति के संदर्भ में नारीवादी खुद एकमत नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि प्रत्येक वर्ग की स्त्रियों के लिए आजादी के मतलब भी अलग–अलग है।

जैसा कि वर्तमान में बाजारवाद एवं भूमण्डलीयकरण की उपभोक्तावादी संस्कृति की चपेट में आयी स्त्री एक उपभोक्ता की स्थिति में है, बाजार जो स्त्रियों को उनके मनमुवाफित रकम दे रहा है और स्त्री उसे भोग रही है। स्त्री मनचाहा खाती–पीती, पहनती नजर आ रही है, आर्थिक रूप से भी वह सामर्थ्यवान हुई तथा अपने को वह सबल भी मानने लगी, घूँघट से मुक्त, घर–परिवार की जिम्मेदारियों से मुक्त होकर अपने लिए संसार के सारी भौतिक सुख–सुविधाओं के साथ जीवन जीने लगी है ऐसी स्त्री को आजाद माना जाय या और आगे बढ़कर जैसा कि 1993 में प्रकाशित पुस्तक 'फायर विथ फायर' की लेखिका नाओमी उल्फ स्त्रियों से अपील करती हैं कि– ''अपने उत्पीड़न की चर्चा के बदले अच्छा होगा यदि स्त्री–पुरुष, सेक्स एवं सौन्दर्य को अपना कर चलें। अंगारों से अंगारे टकराएं, भय कैसा, बंधन कैसा, लज्जा कैसी ? खुलकर खेलो और जियो। पुरूष की कामना तो वह सूरज है जिसमें स्त्री लिखती है। को स्वतंत्र माना जाय। उपर्युक्त दोनों जीवन शैली को अपनाने वाली स्त्रियों के क्या ये आधुनिक जीवन शैली, फैशन परस्ती में पूरी तरह स्वतंत्र हो रही है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की नारीवादियों ने इसी जीवन शैली पर जोर दिया जबकि समाजवादी या मार्क्सवादी नारीवादियों ने इस लिपिस्टिक नारीवाद का भरसक विरोध करते नजर आये और कहा कि ऐसी स्त्रियों को बाजार अब एक नये ढंग से नयी गुलामी तैयार कर रही है।

बाजार संस्कृति को अपनाने का अर्थ हुआ आधुनिक स्त्री आंदोलन को कफन ओढ़ाना। सत्तर के दशक में नारीवादी स्त्रियों ने हालाकि मेकअप, फैशन, रोमांस का विरोध नहीं किया था, मगर ये सौन्दर्य प्रसाधन और भोगवादी संस्कृति स्त्री को कैसे जींस में परिवर्तित करते हैं। हर स्त्री अपना जीवन अपने तरीके से जीना चाहती है। इसलिए उसके चयन में, जीवन शैली में विविधता होती है। एक स्त्री जिन चीजों में अपनी आजादी ढूँढ़ती है, दूसरी को वही गुलामी लग सकती है। फिर कौन से मूल्य हैं, जिसे स्त्री अपनाए और यह स्वीकार किया जाये कि अब स्त्रियाँ सचमुच स्वतंत्र हो रही हैं और उनकी अपनी अस्मिता का निर्माण हो रहा है। इस तरह आज भी इस परिवेश और वातावरण में स्त्री के भीतर द्वन्द्व बना हुआ है। इन्हीं द्वन्द्वों के पटाक्षेप को धीरे–धीरे हटाकर उन्हें अपने रास्ते की तलाश करनी होगी और उनकी अपनी अस्मिता का निर्माण भी हो सकेगा।

क्षया शर्मा अपनी पुस्तक– 'स्त्रीवादी विमर्श : समाज और साहित्य' में इस संदर्भ की चर्चा लेते हुए लिखती हैं कि– ''टेलीवीजन के विज्ञापन प्रायः यथास्थिति को तोड़ रहे हैं। वे स्त्रियों को घूँघट और पर्दे से बाहर ला रहे हैं। वे उसका ड्रेस कोड बदल रहे हैं जो स्त्री के विकास की अनिवार्य शर्त है। स्त्री सशक्तीकरण की प्रक्रिया में जो भी काम किया गया है,उसमें बार–बार इस बात पर जोर दिया गया है कि स्त्रियों को यदि विकास की प्रक्रिया में शामिल करना है तो उन्हें रूढ़ियों से मुक्ति पानी होगी, उन्हें अपनी दबी–कुचली होने की छवि में ही 'मुक्ति' ढूंढ़ने की प्रक्रिया को बन्द करना होगा स्त्री को घरेलू काम से किसी सीमा तक आजाद करने का संदेश विज्ञापन देते हैं। वाशिंग मशीन, मिक्सी, ग्राइंडर, मसाले आदि विज्ञापन उन्हें फालतू के श्रम से निजात पाने के रास्ते सुझाते हैं। प्रसाधन के विज्ञापन आकर्षण और आत्म विश्वास युक्त बनाने का संदेश देते हैं।

वहीं दूसरी नारीवादी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का मानना है कि आर्थिक रूप से मजबूत होने वाली स्त्री के लिए अब पहले जैसे बंधन की बाध्यता नहीं। शिक्षा और सभ्यता का आर्थिक नजारा स्त्री स्वतंत्रता के तेवरों में है। फिर भी मैत्रेयी पुष्पा लिखती है कि– ''मगर मेरे मन में यह सवाल बार–बार आता है कि आधुनिक पोशाक की

स्वामिनी, मेकअप के अधीन दमकने वाली और फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने वाली स्त्री क्या सचमुच ही आजादी का अर्थ समझ गई हैं ? माना कि समझ गयी है तब क्या घर–गृहस्थी के बन्धन से मुक्त हुई है ? क्या उसने बराबरी से घर की जिम्मेदारी पति के साथ बाँटी है ? नहीं ? आजकल परिवार का अर्थ भले पति–पत्नी और बच्चों से लिया जाये तो भी घर की संभाल और बच्चों का लालन–पालन सहज स्वाभाविक रूप से पत्नी द्वारा होना ही माना जाता है। उसमें उसकी शिक्षा, योग्यता और बाहरी जिम्मेदारी की दलील नहीं चलती।

इस प्रकार स्त्रियाँ आज पहले से ही कहीं ज्यादा स्वतंत्र हैं। आर्थिक रूप से मजबूत हो रहीं हैं। स्त्रियों के सामने दो मूल्य है– एक परम्परागत और दूसरा आधुनिक मूल्य (उपभोक्तावादी मूल्य)। लेकिन जरा सी गम्भीरता में देखा जाये तो दोनों मूल्यों में अधूरापन दिखाई देता है। आज न स्त्री पूरी तरह से परम्परागत मूल्यों को अपना पा रही है और न ही आधुनिक उपभोक्तावादी मूल्य को जो उसे भी नयी गुलामी दे रहा है। तो स्त्री अस्मिता के निर्माण के लिए फिर कौन सा मार्ग अख्तियार किया जाए, इस पर बड़ी गम्भीरता से स्त्रीवादी चिंतकों को सोचना होगा। परम्परा का टूटना भी आवश्यक होता है लेकिन कभी–कभी कुछ परम्पराएँ आज भी प्रगतिशील रूप से समाज में विद्यमान है, इसलिए एक सिरे से उसे हम खारिज भी नहीं कर सकते और ऐसा भी नहीं हो सकता की आज अब हम नए आधुनिक मूल्यों को एक साथ स्वीकार कर लें। ऐसा कदापि सम्भव ही नहीं हो सकता। हम आज इस बात पर जोर देते है कि स्त्रियों के सामने विकल्प मौजूद है, चयन की पूरी आजादी है तो लगता है कि स्त्रियाँ सचमुच स्वतंत्र है, चयन करने के लिए, अपनी अस्मिता का निर्माण करने के लिए लेकिन फिर उसी चयन को प्रश्नांकित भी किया जाता है और चयन अधूरेपन का शिकार होता है। इसलिए वर्तमान समय में उनके सामने आने वाली चुनौतियों एवं समस्याओं के अनुरूप मानवीय, लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों में अपनी मुक्ति की कामना कर वैकल्पिक दुनिया का निर्माण करे जिससे उनकी उन्नति साथ ही देश की उन्नति भी हो सके। इसलिए महादेवी वर्मा लिखती है कि– ''स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है, परन्तु यह कर्तव्य उसे अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों को तोल कर स्वेच्छा से स्वीकार करना चाहिए, परवश होकर नहीं। कोई अन्य मार्ग न होने पर बाध्य होकर जो स्वीकार किया जाता है वह व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। यदि उनके जन्म के साथ विवाह की चिन्ता न कर उनके विकास के साधनों की चिन्ता की जावे, उनके लिए रूचि के अनुसार कला, उद्योग–धन्धे तथा शिक्षा के द्वार खुले हों, जो उन्हें स्वावलम्बिनी बना सके और तब अपनी शक्ति और इच्छा को समझ कर यदि वे जीवन संगी चुन सकें तो विवाह उनके लिए तीर्थ होगा, जहाँ वे अपनी संकीर्णता मिटा सकेंगी, व्यक्तिगत स्वार्थ को बहा सकेंगी और उनका जीवन उज्जवल से उज्ज्वलतर हो सकेगा। इस समय उनके त्याग पर अभिमान करना वैसा ही उपहासास्पद हैं, जैसा चिड़िया को पिंजरे में बन्द करके उसके, परवशता से स्वीकृत जीवन उत्सर्ग का गुणगान।

संदर्भ

1. नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार, संपादक ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण–2009, पृ0 IX (भूमिका से)
2. वही पृष्ट
3. उत्तर आधुनिकता साहित्य विमर्श, सुधीश पचौरी, पृ0 121
4. स्त्री विमर्श : विविध पहलू, संपा. कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011, पृ0 221
5. वही, पृ0 258
6. वही, पृ0 286
7. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, गीताश्री, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ0 60
8. वही, पृ0 61
9. कितने प्रश्न करूँ, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ0 – कवर पेज से
10. स्त्री अध्ययन की बुनियाद, प्रमीला के0पी0, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण–2015, पृ0 कवर पेज
11. महादेवी के गद्य में स्त्री विमर्श, अनूपा कुमारी, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी प्रथम संस्करण–2010, पृ0 9
12. स्त्री अस्मिता : शय्या से सर्वोच्च अदालत तक, सीमा दीक्षित, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2011, पृ0 135
13. चर्चा हमारा, मैत्रेयी पुष्पा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ0 43
14. बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ0 227
15. स्त्रीवादी विमर्श : समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ0 98
16. खुली खिड़कियां, मैत्रेयी पुष्पा, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2005, पृ0 72
17. श्रृंखला की कड़िया, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–20011, पृ0 56